National Journal of
Hindi & Sanskrit Research

ISSN: 2454-9177
NJHSR 2015; 1(2): 07-10
© 2015 NJHSR
www.sanskritarticle.com
Received: 23-10-2015
Accepted: 25-10-2015

डॉ. आशा अंबोरे
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज,
नागपुर विद्यापीठ,नागपुर.

Correspondence:
डॉ. आशा अंबोरे
स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग,
राष्ट्रसंत तुकडोजी महाराज,
नागपुर विद्यापीठ,नागपुर.

कविकुलगुरू कालिदास के नाटकों में ललितकला निदर्शन

डॉ. आशा अंबोरे

नाट्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का ऐसा दर्पण है, जिसमें चराचर विश्व की प्रतिच्छवि का अवलोकन किया जा सकता है। भरत मुनि के अनुसार यह तीनों लोकों के भावों का अनुकीर्तन है - **त्रैलोकस्यास्य सर्वस्य नाट्यं भावानुकीर्तनम्।** सभी प्रकार के मनुष्यों की क्रियाओं का विधान होने के कारण इमसें सभी ज्ञान, शिल्प विद्या कला एवं शास्त्रों का सन्निवेश होता है। कोई भी ऐसा योग या कर्म नही जिसका प्रदर्शन नाट्य में संभव न हो।[1] नाट्यशास्त्रों के प्रथम अध्याय में विनोदकरणं लोके नाट्यमेतद् भविष्यति। ऐसा उल्लेख आता है। लोगो का मनोरंजन करना यह नाट्य का एक उद्देश्य हुआ किन्तु समाज मन को बोध कराना, उपदेश देना सदाचार का मार्ग बतलाना ये भी एक नाट्य का महत्वव पूर्ण उद्देश्य है।[2] कविकुलगुरु कालिदास भी इन बातों से सहमत है और इसीलिए सब प्रकार की रूचिवाले लोग नाट्य से समान आनन्द पाते है यह उनका मत है।[3]

नाट्य से यह आनन्द पाने के लिए नाटक में कथावस्तु का प्रवाह जरूरी है, परन्तु इस के साथ साथ अनेक कलाओं का दर्शन भी आवश्यक है। यह बात कालिदास को अच्छी तरह से ज्ञात थी। इसीलिए अपने तीनो नाट्यकृतियों में अनेकविध कलाओं का प्रयोग उन्होने किया। कालिदास के नाटकों की अनेक विशेषताएँ है। कालिदास का कौशल्यपूर्ण वस्तुविन्यास, पात्रो का अकृत्रिम चरित्रांकन, नाटकों में का स्वप्निल वातावरण, नाट्य की काव्यमयता, अदभुत और प्रणयरम्य प्रसंग, संवादो की सहज प्रवाहिता ये सारी बातें उसकी सर्वत¨मुखी प्रतिभाकी परिचायक तो हैं ही, परन्तु ललित कलाओं के प्रति उसका स्वाभाविक रुझान उसकी निजी विशेषता है, जो उसकी रचनाअ में मानो प्राण भर देती है। यह बात का प्रत्यय उसके नाट्यकृतियों में जगह जगह दृष्टिगोचर होता है। ललितकलानुरागी कालिदासने कलाअ का पुट देकर कथाओं का एक अनोंखा आयाम दिया है। उसके रूपकों से झलकते कला-निदर्शन का यथामति विवेचन करने का विनम्र प्रयास प्रस्तुत निबन्ध में किया है।

कालिदास ने अपने रूपक¨ में ललित कला के पाँच¨ भेदों का सन्निवेश किया है।

(1) काव्यकला(2) संगीत कला (3) चित्रकला (4) मूर्तिकला
(5) वास्तुकला

शिल्प शब्द का प्रयोग भी कवि ने (ललित कला) इसी आशय में किया है।[4]

(1) काव्यकला - कालिदास विरचित मेघदूत और ऋतुसंहार खण्डकाव्य; रघुवंशम् और कुमारसंवम्, महाकाव्य; तथा मालविकाग्निमित्रम् विक्रमोर्वशीयम् एवं अभिज्ञानशाकुन्तलम्नाटक सभी काव्यकला के चरम आदर्श माने गये है।

(2) संगीतकला - कालिदास ने नाट्य में संगीत की अनिवार्य आवश्यकता स्वीकार की है। गीत, वाद्य और नृत्य संगीत के तीनों भेदों का उपयोग उन्होने अपने नाट्य में किया है।

दशरूपककार धनञ्जयने नृत्य, नृत्त, नाट्य में भेद का विश्लेषण किया है। -

अन्यभदवाश्रयं नृत्यम्, नृत्त तालयाश्रयम्।
रसाश्रयान्नाट्यम्।

आगे वह लिखते है कि नृतेर्गात्रविक्षेपार्थत्वेनाङ्गिकबाहुल्यातत्कारिषु - शब्दार्थ का अभिनय कर भावप्रदर्शनमात्र करने क¨ नृत्य तथा तालय के साथ हस्तपाद-सञ्चालन नृत्त कहा है।[5] कालिदास ये सब बातें जानते थे। इसका प्रत्यय उनकें तीनों नाटकों में आता है। संगीत के मर्मज्ञ कालिदास का उद्देश्य कोरे संदर्भहीन नृत्य या अभिनय का प्रदर्शन करना नहीं बल्कि इस संगीतकला का उपयोग वस्तुविकास के लिए, नाटक को कलात्मक रूपसे विशेष प्रवाहित करने के लिए और प्रेक्षकगण कों lxhr dk vo.kuh; vkनन्द

देने के लिए किया है। नाटक का ज्ञान तो उसे था ही किन्तु साभिनय गानयुक्त नृत्य भी उसे अच्छी तरह से अवगत था। उसीकी प्रतीति ' मालविकाग्निमित्र' नाटक के प्रथम अंक में स्पष्ट होती है।

परिव्राजिका-

देव,शर्मिष्ठायाकृतिंचतुष्पादोत्थं,' छलिकं' दुष्प्रयोंज्यमुदाहरन्ति।[6]

गणदास - देव, शर्मिष्ठायाः कृतिलयमध्या चतुष्पदास्ति। तस्यास्तु छलिकप्रयोग...[7]

इसप्रकार द्वितीय अंक में मालविका के नृत्यप्रदर्शन के बाद जब विदूषक कहता है कि क्रमभंग हुआ तब परिव्राजिका का जो कथन है यादृष्टं सर्वमनवद्यम्। कुतः -

अङ्गौरन्तर्निहितवचनैः सूचितः सम्यगर्थः
पादन्यास॑ लयमनुगतस्तन्मयत्वं रसेषु।
शाखाय॑निर्मृदुरभिनयस्तद्विकल्पानुवृतो।
भाव॑ भावं नुदति विषयाद्रागबन्ध स एव।।[8]

इस श्लोक में ' अङ्गैरन्तर्निहिवचनैः' से आङ्गिक और वाचिक; ' पादन्यास॑' से नृत्य के पदन्यास ' शाखा' शब्द से नृत्यप्रकार का ज्ञान ' भावोभावं' .... में भावाभिव्याक्ति - ' मुद्राभिनय प्रतीत होना है और मालविका के नृत्य समाप्त होने के बाद का यह कथन -

वामं संधिस्तिमितवलयं न्यस्य हस्तं नितम्बे
कृत्वा श्यामविटपसदृशं स्रस्तमुक्तं द्वितीयम्।
पादाङ्गुष्ठालुलितकुसुमे कुट्टिमे पातिताक्षं
नृत्तादस्याः स्थितमतितरां कान्तमृज्वायतार्धम्।। (2/6)

यह सब कालिदास का नृत्य के सूक्ष्म ज्ञान को दर्शाता है। मालविकाग्निमित्र के निम्नलिखित श्लोक में अभिनय के आङ्गिक, वाचिक आदि भेदों को दर्शाता है।

जनमिमम्नुरक्तं विद्धि नाथेति गेये
वचनमभिनयन्त्याः स्वाङ्गनिर्देशपूर्वकम्।
प्रणयगतिमदृष्ट्वा धारिणीसंनिकर्षा
दहमिवसुकुमारप्रार्थनाव्याजमुक्तः।।[9]

यहाँ वचनमभिनयन्त्या पद में वाचिक अभिनय, ' स्वाङ्गनिर्देश ' में आङ्गिक तथा व्यक्त प्रेम सात्विक अभिनय में आता है। मालविका के पञ्चागाभिनय से गीत, वाद्य ओंर नृत्य ये तीन आंङ्गिक, सात्विक और वाचिक अभिनय से कालिदास का आशय होगा। मालविका के ललित नृत्य से भी इसी की पुष्टि होती है।

कालिदास ने ' नृत्य ' तथा ' नृत्त ' दोनों॑ का उपयोग किया है। उन्होने दोनो क स्पष्ट करते हुए लिखा है कि रुद्र ने उमा के साथ विवाह कर अपने शरीर में ताण्डव और लास्य दो भेद कर दिये।[10]

कालिदास की कृतियों से जैसे उनका कलाज्ञान दृष्टिगोचर होता है, उसी प्रकार तत्कालीन समाजमानस की कलाप्रियता भी सूचित होती है।
इरावती रानी को नृत्यसिखाने के लिए व्यक्तिगत नृत्याचार्य थे। इससे स्त्रियों की कलाभिरुचि अभिव्यक्त होती है तथा स्पष्ट होता है कि कला की उपासना में महिलाओं को भी पुरी स्वतंत्रता थी।

भरतमुनि ने नाट्य के अन्तर्गत गीत, वाद्य एवं नृत्य (अभिनय) का वर्णन किया है। उन्होने कहा कि नाट्यप्रयोक्ता को पहले गीत में परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि गीत नाट्य की शय्या है। गीत और वाद्य का सम्यक् रूप से प्रयोग ह॑ने पर नाट्यप्रयोग में कोई विपत्ति नहीं आती है।[11]राग (या जातिद), पद, ताल एवं मार्ग इन चार अंगो से युक्त गान गीत कहलाता है।[12] गीत नाट्य का अंग ही नहीं प्राण है। वाद्य एवं नृत्य गीत के उपरंजक एवं उत्कर्षविधायक मात्र है।[13] नाट्यप्रय॑ग में गीत एवं संगीत के द्वारा चारो तरफ का वातावरण मधुर एवं आकर्षक बना दिया जाता है।

कालिदास ने अपने तीनो रूपको में गीतों का प्रयोग किया है। उनके नाटक॑ में प्रयुक्त लय, ताल, उपगान मूर्च्छना आदि शब्दों से ऐसा आभास मिलता है कि उन्होने रागबद्ध शास्त्रिय गीत तथा लोकगीत (उत्सवों के अवसर पर गाया जानेवाला) दोनों का उपयोग किया है।
नाटक में शास्त्रिय नियमानुसार पहले नान्दी गायन तदुपरान्त ऋतु विशेष का गीत गाया जाता है। अभिज्ञानशाकुन्तल में नान्दी के बाद सूत्रधार के निर्देशनुसार नटी के ग्रीष्मऋतुविषयक गीत गाती है। इस गीत में नाटक की और संकेत मिलता है। नटी के लुभावने सुरों से सुत्रधार सब कुछ भूल जाता है। तवास्मि गीतरागेण हारिणा प्रसभं हृतः। विक्रमोर्वशीयम् के चतुर्थ अंक में उर्वशी ने विरह में व्यथित ऊंन्मत्त स्थिति में अपने हृदय के अनुराग को व्यक्त करने के लिए जम्भलिका, खण्डधारा, चर्चरी, खूरक, मन्दघटी, कुटिलिका आदि अनेक गीत प्रकारों का उपयोग किया है।[15] छलित, भाविक पञ्चाङ्गाभिनय यह पारिभाषिक शब्द का प्रयोग कालिदास ने किया है।
नाट्य में गीत के साथ वाद्य का होना आवश्यक है। संगीत में इन दोनो की अनिवार्य स्थिति मानी गयी है। रंगभूमि के वातावरण को प्रशान्त बनाने में गीत के साथ वाद्य भी अपेक्षित है। प्राचीन वाद्यवेताऔ ने वाद्ययंत्रों को चार भागो में विभक्त किया है। लक्ष्य के अनुसार संगीत-रत्ना के शुष्क, गीतानुग, नृत्तानुग एवं साहित्य में सभी वाद्ययन्त्रो का उल्लेख मिलता है। लेकिन नाटकों में चर्मवाद्य के अन्तगत आनेवाले, मुरज, पुष्कर, मृदंग इनका प्रयोग मालविकाग्निमित्रम् नाटक में –

(1) **धैर्यावलम्बिनमपि त्वरयति मां मुरजवाद्यरागोऽयम्।**[16]

(2) **जीमूतस्तनित विशङ्किभिर्मयूरै**
रुद्ग्रीवैरनुरसिदस्य पुष्करस्य।
निदर्यादिन्युपहित मध्यमस्वरोंत्था
मायूरी मदयति मार्जना मनांसि।।[17]

इन सब बातो से कालिदास संगीत के तीनो प्रकारों का ज्ञाता होने का पता चलता है।

कालिदास ने नाद, स्वर, ग्राम मूर्च्छना, ताल, लय, तान, राग आदि संगीत के पारिभाषिक शब्दों का उपयोग किया है। उसके साथ तन्त्रगत वाद्य (वीणा आदि), सुषिर (रन्ध्रयुक्त वाद्य), अवनद्धवाद्य (मुरज, पुष्कर, मृदंग, दुन्दुभि, पटह, मर्दल आदि) तथा घनवाद्य (घण्टा) जैसे अनेक वाद्ययंत्रो के प्रयोग भी इन के नाटको में मिलते है।[18]

(3) संगीतकला की भाँति चित्रकला का उपयोग भी कालिदास के नाट्यकृतियों में आया है। अन्य कलाओं की भाँति कालिदास को चित्रकला भी अत्याधिक प्रिय थी। चित्रशाला शब्द का प्रयोग जनता की अभिरुचि एवं चित्रप्रियता की और संकेत करता है। चित्र बनानेवाले विशेष निपुण व्यक्ति को चित्राचार्य कहा गया है।

चित्रशालां गता देवी यदा प्रत्यग्रवर्णरागां चित्रलेखामाचार्य स्यालोकयन्ती तिष्ठति।[19]

कालिदास के साहित्यकृतियों में दुष्यंत, पुरुरवा, और यक्ष ये तीनो नायक, रघुवंश में अग्निवर्ण राजा ' मेघदूत' में यक्षपत्नी ये सब उत्तम चित्रकार के रूप में चित्रित है। मालविकाग्निमित्र में धारिणी और अभिज्ञानशाकुन्तल

में शकुन्तला की सहेलियाँ चित्रकला की शौकिन बताई है। उनके नाटकों में अनेक प्रसंग चित्रदर्शन या लेखनपर आधारित है। मालविकाग्निमित्र में अग्निमित्र राजा को मालविका का सर्वप्रथम दर्शन एक चित्र में ही होता है और दुसरे प्रसंग में, चित्र में चित्रित अग्निमित्र राजा को प्रेमपूर्वक निहारती हुई ईरावती को देख, मालविका को उसके प्रति द्वेष उत्पन्न होता है।

कालिदास ने चित्रकला के लिए चित्र एवं प्रतिकृति दो शब्दों का प्रयोग किया है।[20] जिस लकड़ी के चोकोर तख्ते पर रखकर चित्र खिंचा जाता था यह चित्रफलक कहलाता था।[21]

कालिदास के नाटकों में कई प्रकार कें चित्रों का उल्लेख मिलता है। सामूहिक चित्र का उल्लेख मालविकाग्निमित्र के प्रथम अंक में रानी के साथ दासियों में मालविका के चित्र में मिलता है।

अभिज्ञानशाकुन्तल में पश्चातापदग्ध दुष्यन्त राजा, कण्वाश्रम में शकुन्तला का जब पहली बार दर्शन हुआ था उस प्रसंग का अधुरा चित्र बनाता है। इस प्रसंग से यह ज्ञात होता है कि, कथानक के विकास के लिए और पात्रों के भावनाविष्कार के लिए कालिदास अपने नाट्यग्रंथों में चित्रकला का कैसा मार्मिकता से उपयोग करता है, यह स्पष्ट होता है। उपर बनाया चित्र अधुरा था वह पूरा करने के लिए और किन किन बातो की आवश्यकता है इसका उल्लेख राजा करता है। चित्र सजीव बनाने के लिए पृष्ठभूमी का कितना अत्याधिक महत्व होता है, यह शाकुन्तल के इस श्लोक से समझा जा सकता है।

कार्या सैकतलीनहंसमिथुना स्रोतोवहा मालिनी
पादास्तामभितो निष्पण्णहरिणा गौरीगुरों पावना।
शाखालम्बितवल्कलस्य च तरोर्निर्मातुमिच्छाम्यध
शृङ्गे कृष्णमृगस्य वामनयनं कण्डूयमानां मृगीम्।[22]

शकुन्तला के शरीरपर कौन, कौनसे पुष्पालंकार चित्रीत करना है इसका वर्णन भी राजा करता है। पृष्ठभूमि भावनाविष्कार, समुचित अलंकार इन सब बातों का सूक्ष्मतया वर्णन करनेवाला कवि खुद उत्तम चित्रकार होगा ये नकारा नहीं जा सकता।

मालविकाग्निमित्र में ' अग्निमित्र' का चित्र जैसा हुबहु है वैसी ही शकुन्तला के चित्र की भी विशेषता है।

एषा राजर्षेर्निपुणता सख्यग्रगा मे नर्तत इति -

यह उक्ति विश्वास दिलाती है कि उसे अवश्य ही ऐसा प्रतीत हुआ होगा कि शकुन्तला साक्षात् खड़ी है।

उपचारानन्तरमेकासनोपविष्टेन भर्ता चित्रगताया देव्या
परिजनमध्यगतामासन्नदारिकां दृष्ट्वा देवी पृष्टाः।[23]

शकुन्तला के चित्र में उनकी दोनो सखियों का भी चित है।[24]

व्यक्तिगत चित्र का उल्लेख विक्रमोर्वशीयम् त्रौटक में उस स्थल पर मिलता है जहाँ पुरुरवा को उर्वशी का चित्र बनाने के लिए विदुषक ने कहा है।

अथवा तत्रवत्या उर्वश्या प्रतिकृतिं चित्रफलक आलिख्याव लोकयंस्तिष्ठतु।

विक्रमोर्वशीयम् में वस्तुचित्र का उल्लेख मिलता है। इस तरह मालविकाग्निमित्र में नागचित्र का जड़ा होना - यह वस्तुचित्र का उदहारण मिलता है।

कालिदास की नाट्यरचनाअ में मूर्तिकला का भी प्रसंगत विवरण मिलता है। विक्रमोर्वशीयम् के तृतीय अंक में लिखा है कि दोपहर की उत्कट उष्णता के कारण नींद में अलसाये मोर अपने अड्डे पर बैठे हुउ पत्थर में खुदे हुए से मालूम पडते है।

उत्कीर्णा इव वासयष्टिषु निशानिद्रालसा बर्हिण[25]

अभिज्ञान शाकुन्तम् के सप्तम अंक में सर्वदमन का मिट्टी के मोर से खेलने का वर्णन मिलता है।26

वास्तुकला का संकेत कालिदास के नाट्यग्रंथो में मिलता है। उन्होने नगर का वर्णन किया है। नगर की मुख्य सड़क का भी उल्लेख कृतियों में आता है। राजप्रासादों में कई कक्ष रहते थे। यह विशाल प्रासाद अन्तर्भाग और बर्हिभाग में बँटे होते थे। बहिर्भाग में अन्नागार, सभागृह, कारागृह, चित्रशाला, संगीतशाला, यज्ञशाला इन वास्तुओं का उल्लेख उनके तीनो नाट्यकृतियों में प्राप्त होता है।[27]

संक्षेप में कालिदास के नाट्यकृतियों में संगीत (गीत, वाद्य, नृत्य) तथा चित्रकला, मूर्तिकला आदि. कलाओं का मनभावन चित्र मिलता है। उसके नाटकों में कला का जो निदर्शन दिखता है, वह कथावस्तु का एक अंग होता है, कथा को प्रवाहित करने के लिए कालिदास ने कलाप्रसंग का प्रयोग बड़ी कुशलतापूर्वक किया है, दुसरी बात कालिदास का सभी कलाओं का सूक्ष्म ज्ञान उसमें से छलकता है। कालिदास कला मर्मज्ञ था इसका पता चलता है, मनोभावों की अभिव्यक्ति से वाचक/प्रेक्षकों को मन हरण करना यह उसकी नीजि विशेषता है। मूल कथावस्तु रोचक बनाने के लिए कालिदास ने सभी कलाओं का उपयोग किया है यह उसका खास वैशिष्ट्य है।

निष्कर्ष -

(1) कालिदास के समय नाट्याचार्य की सामाजिक प्रतिष्ठा थी और नृत्यकलाभिनय का प्रशिक्षण देने के लिए व्यक्तिगत नाट्याचार्य रहते थे।

(2) महिलाओं को स्वतंत्र रूप से अपनी रूचि संवर्धन करने की स्वतंत्रता थी।

(3) परिव्राजिका के लिए राजदरबार में सम्मान का भाव था।

(4) राजप्रासादों में नाट्यशाला (प्रेक्षागृह), संगीत शाला, चित्रशाला आदि का स्थान होता था।

(5) अपने कर्तव्य का योग्य निर्वाह करनेवाले व्यक्ति को पारितोषिक देने की पद्धति थी।

(6) कलाओं का केवल प्रदर्शन करना यह कालिदास का उद्देश्य नही था, कथावस्तु का विकास और उसकी प्रवाहितता अबाधित रखना यह उनका प्रधान हेतू था।

(7) पाश्वभूमि, नाट्य का वातावरण इसके साथ साथ पात्रों के मनोभावों की अभिव्यक्ति के लिए भी गीतो का महत्व कालिदास के नाट्यकृतिओं में दिखता है।

(8) कालिदास संगीत के नृत्य, गीत, वाद्य इन सभी का मर्मज्ञ था।

(9) कालिदास का काल, भारत का सुवर्णकाल था इसीलिए उस काल में सभी कलाएँ अपने चरम उत्कर्ष पे थी। विशेषत चित्रकला और नृत्यकला विशेष प्रगतावस्था में थी।

(10) कालिदास अपने नायकों को चित्रकार के रूप में दिखाता है इसका मतलब, कालिदास चित्रकला का विशेष शौकिन था।

संदर्भ

(1) नाट्यशास्त्र - 1/117

(2) नाट्यशाó - 1/113, 114, 115

(3) मालविकाग्निमित्र - अंक 1/4 श्लं क.

(4) मालविकाग्निमित्र अंक 2, पृ.197, विदूषक - भोवयस्य, न केवलं रूपे, शिल्पेऽप्यद्वितीया मालविका।

(5) दशरूपक - प्रकाश 1 - कारिका 9 और धनिकवृति, पृ.5.

(6) मालविकाग्निमित्र - अंक 1, पृ. 188.

(7) मालविकाग्निमित्र - अंक 2, पृ. 190.

(8) मालविकाग्निमित्र - अंक 2/8

(9) मालविकाग्निमित्र - अंक 2/5

(10) मालविकाग्निमित्र - 1/4

(11) भरत का नाट्यशास्त्र - अध्याय 32, पृ.603.

(12) कालिदास का नाट्य - कल्प, पृ. 46.

(13) आचार्य शाङ्गदेव, स.र.स्वरा, पृ. 15.

(i) कालिदास का नाट्यकल्प, पृ. 46.

(14) अभिज्ञानशाकुन्तल - अंग 1/4.

(15) (i) कालिदास का नाटय् कल्प, पृ. 42.

(ii) जम्भालिका - विक्र. 4/3, खूरक - विक्र.

(iii) खण्डधारा - विक्र 424, मन्दघरी - विक्र.

(iv) चर्चरी - 11 विक्र, कुटिलिका विक्र.

(16) मालविकाग्निमित्र - 1/22.

(17) मालविकाग्निमित्र - 1/21.

(18) कालिदास का नाट्यकल्प, पृ.52.

(19) मालविकाग्निमित्र - अंक, पृ. 175.

(20) (i) इयं चित्रगता ट्रिनी - अभि.शाकुन्तल, पृ.113.

(ii) साक्षात्प्रियामुपगतामपहाय पूर्व चित्रार्पितां पुनरिमां बहुमन्यमान। अभि.शा.6/16.

(iii) नन्वेष चित्रयतो भर्ता। मालविका / अंक 4, पृ.233.

(21) यथाहं पश्यामि पूरितव्यसनेन चित्रफलकं लम्बकूर्चानां तापसानां कदम्बै। - अभि.शाकुं./अंक - 6, पृ.283.

(22) अभिज्ञान शाकुन्त - अंक 6/17.

(23) मालविकाग्निमित्र अंक 1, पृ.175.

(24) अभि.शां., पृ.198.

(25) विक्रमोर्वशीय, अंक 3/2.

(26) अभिज्ञानशाकुन्तल, अंक 7, पृ. 296.

(27) कालिदास का नाट्यकल्प, पृ. 40.

(i) अन्नागार - अभि.शा., पृ.82.

(ii)कारागृह - मालवि., पृ.315.

(iii) चित्रशाला, संगीतशाला, यज्ञशाला - अभि.शा. पृ.83.

(iv) चित्रशाला - माल., पृ. 176, संगीतशाला - पृ.176,

प्रेक्षागृह - भा., पृ.188.